दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय सुरक्षित : 09.05.2023
निर्णय घोषित: 24.05.2023

आ.प्र.अ. **(वा.) 4/2022 और सि.वि.आ. 1408/2022**

नजमस सहर ..... अपीलकर्ता

द्वारा: श्री क्षितिज महिपाल और श्री खैरुन निसा, अधिवक्तागण

बनाम

मैसर्स बॉम्बे मारकैनटाइल कॉप बैंक व अन्य .....प्रत्यर्थी

द्वारा: श्री मिर्जा आमिर बेग, प्र.-1 के अधिवक्ता

कोरमः

माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव शकधर
माननीय न्यायमूर्ति श्री गिरीश कठपालिया

निर्णय

गिरीश कठपालिया, न्या.

1. वर्तमान अपील मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 की धारा 37(1)(ग) के अंतर्गत दायर की गई है एवं जिला न्यायाधीश (वाणिज्यिक)-05, केंद्रीय, तीस

हज़ारी न्यायालय, दिल्ली द्वारा पारित दिनांक 30.10.2021 के आदेश को चुनौती देती है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता द्वारा अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर आपत्ति याचिका को खारिज किया गया था। नोटिस तामील किए जाने पर, प्रत्यर्थी सं. 1 बैंक (*मध्यस्थता न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदार*) ने इस अपील का विरोध करने के लिए अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थिति दर्ज की। लेकिन प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 (*प्रमुख देनदार और मध्यस्थ अधिकरण के समक्ष अब मृत सह-जमानतकर्ता का उत्तराधिकारी*) ने नोटिस प्राप्त होने के बावजूद अपील का विरोध न करने का निर्णय किया।

1.1 हमने अपीलकर्ता और प्रत्यर्थी सं. 1 बैंक के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. इस अपील की पूर्ववर्ती परिस्थितियाँ संक्षेप में इस प्रकार हैं। 14.10.1998 को, वर्तमान प्रत्यर्थी सं. 2 ने एम्बेसडर कार खरीदने के लिए 2,90,000/- रुपये का ऋण वर्तमान प्रत्यर्थी सं. 1, सहकारी बैंक से आडमान पर लिया, जिसके लिए अपीलकर्ता तथा वर्तमान प्रत्यर्थी सं. 3 के अब मृत पिता जमानतकर्ता बने थे। वर्तमान प्रत्यर्थी सं. 2 के व्यतिक्रमी होने के बाद इस अवधि में उसकी ब्याज सहित ऋण चुकाने की देनदारी बढ़कर रु. 10,11,640/- हो गई। नतीजतन, वर्तमान प्रत्यर्थी सं. 1 बैंक ने प्रमुख देनदार (*यहाँ प्रत्यर्थी सं. 2*) के साथ-साथ जमानतकर्ता के विरुद्ध मध्यस्थता कार्यवाही शुरू की, जिसका दिनांक 08.05.2018 को एकपक्षीय अधिनिर्णय के रूप में समापन हुआ। निष्पादन

कार्यवाही के विचाराधीन रहने के दौरान, अपीलकर्ता ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आपत्ति याचिका दायर की, जिसे आक्षेपित आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया। इसलिए, वर्तमान अपील दायर की गई।

3. अंतिम दलीलों के दौरान, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि में रक्षणीय नहीं है, और मुख्य रूप से तीन आधारों पर आक्षेपित आदेश के साथ-साथ मध्यस्थता अधिनिर्णय को चुनौती दी। सबसे पहले, यह तर्क दिया गया था कि मध्यस्थता अधिनिर्णय गलत तरीके से एकपक्षीय रूप में पारित किया गया था क्योंकि अपीलकर्ता को दावे का प्रत्यर्थी होने के बावजूद मध्यस्थता कार्यवाही का नोटिस नहीं तामील किया गया था। दूसरा तर्क यह था कि 14.01.1998 को ऋण दिए जाने के कारण, 23.05.2014 को मध्यस्थ अधिकरण को संदर्भित करना परिसीमा के कारण स्पष्ट रूप से वर्जित था। तीसरा तर्क यह दिया गया कि अपीलकर्ता की भूमिका मात्र एक जमानतकर्ता की होने के कारण और प्रत्यर्थी सं. 2 के प्रमुख देनदार और जीवित होने के कारण, विवाद केवल प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध उठाया जाना चाहिए था।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं. 1 के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया और तर्क दिया कि अपील में कोई गुणागुण नहीं है। प्रत्यर्थी सं. 1 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया था कि मध्यस्थता कार्यवाही का नोटिस

अपीलकर्ता को प्रकाशन के माध्यम से उचित रूप से तामील किया गया था क्योंकि अपीलकर्ता उसके तामील होने से बचता रहा था। परिसीमा के मुद्दे पर, प्रत्यर्थी सं. 1 के विद्वान अधिवक्ता ने बहु-राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 2002 की धारा 85(1)(क) के अंतर्गत प्रावधान का उल्लेख किया और दावा किया कि परिसीमा अवधि का कोई उल्लंघन नहीं हुआ था।

5. खंडन दलीलों में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दावा किया कि अधिनियम की धारा 85(2) के अनुसार, संदर्भित किए जाने के लिए परिसीमा अवधि 14.01.1998 से केवल तीन साल थी, इसलिए मध्यस्थता कार्यवाही समय-बाधित थी। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी दावा किया गया था कि अपीलकर्ता के धोखाधड़ी से जमानत के कागजों पर हस्ताक्षर कराए गए थे, इसलिए उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। हालांकि, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर विवाद नहीं किया कि निष्पादन कार्यवाही का नोटिस अपीलकर्ता को उसी पते पर प्राप्त हुआ था जहाँ से मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करने का नोटिस बिना तामील हुए वापस लौट रहा था, जिसके कारण प्रकाशन द्वारा नोटिस तामील करने का निर्देश दिया गया था।

6. शुरुआत में, अपीलकर्ता की ओर से दिया गया तर्क कि प्रत्यर्थी सं. 2 के प्रमुख देनदार होने से तथा प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं होने के कारण, अपीलकर्ता जो कि 'मात्र' एक जमानतकर्ता था, के विरुद्ध कोई कार्रवाई

नहीं की जा सकती है, इस मौलिक कानूनी स्थिति के विपरीत है कि जमानतकर्ता के दायित्व का दायरा प्रमुख देनदार के दायित्व के दायरे के समान है और वे दोनों ऋणदाता के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग रूप से उत्तरदायी हैं। इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस बात को नजरअंदाज कर दिया है कि वर्तमान मामले में मध्यस्थता कार्यवाही न केवल अपीलकर्ता के विरुद्ध बल्कि प्रमुख देनदार प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ-साथ सह-जमानतकर्ता प्रत्यर्थी सं. 3 के विरुद्ध भी की गईं थीं और इनका मध्यस्थता अधिनिर्णय के रूप में समापन हुआ।

7. जहाँ तक मध्यस्थता कार्यवाही के नोटिस के तामील होने की बात है, जैसा कि ऊपर उल्लिखित है, स्वीकार्य रूप से मध्यस्थता कार्यवाही का नोटिस उसी पते पर भेजा गया था जहाँ अपीलकर्ता द्वारा निष्पादन कार्यवाही का नोटिस प्राप्त किया गया था। मध्यस्थता कार्यवाही का नोटिस अपीलकर्ता को उसके आवासीय पते, 1802 अहमद मंज़िल, कलान महल, दरियागंज, दिल्ली पर भेजा गया था, जो स्वीकार्य रूप से अपीलकर्ता का सही पता है और इस अपील के पक्षकारों के ज्ञापन में भी इसका उल्लेख है। लेकिन मध्यस्थ अधिकरण द्वारा जारी नोटिस कूरियर द्वारा तीन बार बिना तामील हुए लौटाया गया, इसलिए मध्यस्थ अधिकरण को "राष्ट्रीय सहारा" समाचार-पत्र में नोटिस का प्रकाशन कर एवज़ी तामील का सहारा लेना पड़ा। क्योंकि एवज़ी तामील के बावजूद, प्रमुख देनदार और

दोनों जमानतकर्ताओं की ओर से कोई भी पेश नहीं हुआ था, इसलिए मध्यस्थ अधिकरण के समक्ष उनके विरुद्ध 11.05.2015 को एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। अपीलकर्ता स्वयं मध्यस्थता कार्यवाही में शामिल नहीं होने के कारण अब यह दावा नहीं कर सकता है कि उससे धोखाधड़ी से जमानत के कागजों पर हस्ताक्षर कराए गए थे।

8. इसके बाद जहां तक परिसीमा संबंधी चुनौती आती है, अपीलकर्ता के अनुसार ऋण 14.01.1998 पर दिए जाने के कारण मध्यस्थ न्यायाधिकरण को 23.05.2014 पर संदर्भित किया जाना समय-बाधित था। अपीलकर्ता की ओर से दिया गया यह खंडन तर्क कि बहु-राज्य सहकारी समिति अधिनियम की धारा 85(2) के अनुसार, जिस विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया जाना था, उसे परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों के अधीन विनियमित किया जाएगा मानो कि यह विवाद एक वाद हो, इस बात को पूर्ण रूप से नज़रअंदाज़ करता है कि उक्त प्रावधान अधिनियम की धारा 85 की उप धारा (1) में उल्लिखित विवादों के अलावा अन्य विवादों में प्रभावी होता है। अधिनियम की धारा 85(1) के अधीन प्रावधान इस प्रकार नियत करता है :-

"*85. परिसीमा -*

(1) परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) में मौजूद किसी भी बात के बावजूद, परंतु इस अधिनियम में किये गए विशिष्ट प्रावधानों के अधीन, मध्यस्थता के लिए निर्दिष्ट एक विवाद के मामले में परिसीमा की अवधि निम्नानुसार रहेगी, -
(क) जब विवाद किसी बहु-राज्य सहकारी समिति को उसके सदस्य द्वारा देय ब्याज सहित किसी राशि की वसूली से संबंधित है, तो परिसीमा की उस तारीख से गणना की जाएगी जिस दिन ऐसे सदस्य की मृत्यु हो जाती है या वह समिति का सदस्य नहीं रहता है;

(ख) खंड (ग) में अन्यथा प्राविधान की गई किसी भी बात के अतिरिक्त जब विवाद धारा 84 की उप-धारा (1) के खंड (ख) या खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट किसी पक्षकार की ओर से किसी कार्य या चूक से संबंधित हो, तो परिसीमा उस कार्य या चूक, जिसके संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ था, की तारीख से छह वर्ष होगी;

(ग) जब विवाद किसी बहु-राज्य सहकारी समिति के अधिकारी के चुनाव के संबंध में हो, तो परिसीमा चुनाव के परिणाम की घोषणा की तारीख से एक महीना होगी।

9. उपरोक्त उद्धृत प्रावधान से यह स्पष्ट है कि जहां कोई विवाद किसी सहकारी समिति को उसके सदस्य द्वारा देय ब्याज सहित धन की वसूली से संबंधित है, तो मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने की परिसीमा की अवधि की गणना उस तारीख से की जाएगी जिस दिन वह सदस्य मर जाता है या वह उस समिति का सदस्य नहीं रहता है। और यह परिसीमा अधिनियम में मौजूद किसी भी बात के

बावजूद है। प्रकट रूप से अधिनियम की धारा 85(1)(क) के तहत प्रावधान कानून का एक असाधारण प्रावधान प्रतीत होगा। लेकिन अवधारणा के एक संक्षिप्त अवलोकन पर, ऐसा प्रतीत होता है कि यह सहकारी संस्था के विश्वास संबंधी हित की रक्षा के साथ-साथ, सहकारी समिति और उसके सदस्य के बीच बंधन के पोषण को सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया था, जब तक कि सदस्य की मृत्यु न हो या उसकी सदस्यता समाप्त न हो जाए।

10. 2002 के मार्च महीने में, भारत सरकार ने सहकारी समितियों पर एक विस्तृत राष्ट्रीय नीति तैयार की, जिसमें भारत में सहकारी आंदोलन की उत्पत्ति और विकास और मौजूदा बाधाओं के साथ-साथ इसे दूर करने के लिए नीति और कार्य योजना शामिल है। जैसा कि उक्त नीति दस्तावेज में अन्य बातों के साथ-साथ देखा गया है, सहकारी समितियों की विचारधारा आत्म-सहायता, आत्म-जिम्मेदारी, लोकतंत्र, समानता, समानता और एकजुटता के सिद्धांतों पर आधारित है। भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के साथ परामर्श और सहयोग से लिए गए नीतिगत निर्णय में बैंकिंग, आवास, अचल संपत्ति विकास, प्रसंस्करण, निर्माताओं की सहकारी समितियों और बुनियादी ढांचे के विकास आदि के संबंध में सहकारी समितियों के अधिनियमों में विशेष प्रावधानों को शामिल करने की आवश्यकता को मान्यता देना शामिल है। नीतिगत निर्णय ने ऋण, श्रम, उपभोक्ता, सेवा, आवास, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और महिलाओं के विकास और उभरते क्षेत्रों

के विकास के साथ-साथ विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की भागीदारी की आवश्यकता वाले क्षेत्रों में लगी सहकारी समितियों को जहां तक संभव हो, वरीयता प्रदान करने की आवश्यकता को भी मान्यता दी। यह नीति इस विश्वास के साथ समाप्त हुई कि यह सहकारी समितियों को लोकतांत्रिक रूप से स्वामित्व वाले आत्मनिर्भर उद्यमों, जो अपने सदस्यों के प्रति और एक व्यापक सार्वजनिक हित के लिए जिम्मेदार और जवाबदेह हैं, के रूप में स्थायी स्वायत्तता और स्थायी व्यवहार्यता सुनिश्चित करेगी।

11. जैसा कि इसकी प्रस्तावना में अधिकथित किया गया है, बहु-राज्य सहकारी समितियाँ अधिनियम, 2002 को एक राज्य तक सीमित नहीं रहने वाले और एक से अधिक राज्यों में सदस्यों के हितों की सेवा करने वाले उद्देश्यों के साथ सहकारी समितियों से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित करने के लिए और उनसे जुड़े या आनुषंगिक मामलों के लिए अधिनियमित किया गया था, ताकि स्व-सहायता और पारस्परिक सहायता के आधार पर लोगों की संस्थाओं के रूप में सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन और लोकतांत्रिक कामकाज को सुविधाजनक बनाया जा सके और उन्हें अपनी आर्थिक और सामाजिक बेहतरी को बढ़ावा देने में सक्षम बनाया जा सके और कार्यात्मक स्वायत्तता प्रदान की जा सके।

12. तब, अधिनियम की धारा 85(1)(क) के तहत प्रावधान, सहकारी समिति और उसके चूक करने वाले सदस्य के बीच मध्यस्थता के लिए धन विवाद के संदर्भ के

लिए परिसीमा अवधि से निपटने के दौरान, परिसीमा के सामान्य कानून से एक असाधारण स्थान बनाता है। और यह इस अधिनियम के निर्माण के मूल उद्देश्य के साथ पूर्णतया अनुरूप है।

13. वर्तमान मामले पर वापस आते हुए, स्वीकार्य रूप से, अपीलकर्ता न केवल एक सदस्य, बल्कि प्रत्यर्थी सं. 1 बैंक का एक शेयरधारक भी है, जैसा कि एक्स. सी.डब्ल्यू.1/5 द्वारा स्थापित किया गया है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता ने प्रत्यर्थी सं. 1 से शेयर खरीदे थे। ऐसा होने पर, प्रत्यर्थी सं. 1 को अपीलकर्ता द्वारा देय ब्याज सहित धन की वसूली के उद्देश्यों हेतु, विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने की परिसीमा अवधि अधिनियम की धारा 85(1)(क) द्वारा शासित होगी न कि परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों द्वारा। चूँकि अपीलकर्ता जीवित है और प्रत्यर्थी सं. 1 बैंक की उसकी सदस्यता समाप्त नहीं हुई है, 23.05.2014 पर, विवाद को संदर्भित करने के लिए परिसीमा अवधि शुरू भी नहीं हुई थी और इसलिए, मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया जाना विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण नहीं था।

14. जैसा कि विद्वान जिला न्यायाधीश (वाणिज्यिक) द्वारा आक्षेपित आदेश में भी उचित रूप से कहा गया है, अधिनियम की धारा 34 के तहत आपत्तियों का दायरा काफी सीमित है और अपीलीय अधिकार क्षेत्र के दायरे के समान नहीं है।

15. हम आक्षेपित आदेश में कोई दुर्बलता नहीं पाते हैं, इसलिए इसे बरकरार रखा जाता है और अपील खारिज कर दी जाती है। सभी लंबित आवेदनों का तदनुसार निपटान किया जाता है।

16. इस आदेश की प्रति संबंधित न्यायालय को भेजी जाए और मिसल को अभिलेख में भेजा जाए।

(गिरीश कठपालिया)
न्यायाधीश

(राजीव शकधर)
न्यायाधीश

24 मई, 2023

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*